क्या ग़रीब देश सौ साल पुराने निर्भरता के निराशाकारी चक्र को तोड़ पाएंगे ?: 32वां न्यूज़लेटर (2023)

प्यारे दोस्तों,

ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन।

मैंने जुलाई के अंत में साओ पाउलो (ब्राज़ील) के भूमिहीन ग्रामीण श्रमिकों (एमएसटी) की दो बस्तियों का दौरा किया। इन दोनों बस्तियों का नाम ब्राज़ील की दो बहादुर महिलाओं – मारिएले फ्रेंको और इरमा अल्बर्टा – के नाम पर रखा गया है। मारिएले फ्रेंको एक विधायक थीं, जिनकी 2018 में हत्या कर दी गई थी और इरमा अल्बर्टा एक इतालवी कैथोलिक नन थीं, जिनकी 2018 में मृत्यु हो गई थी। जहाँ एमएसटी ने मारिएले विवे कैम्प और इरमा अल्बर्टा लैंड कम्यून बनाए हैं वहाँ पहले गोल्फ़ कोर्स, कचरा घर आदि के साथ गेटेड कोलोनियों का निर्माण प्रस्तावित था। **1988 के ब्राजीलियाई संविधान** में दर्ज भूमि उपयोग के सामाजिक दायित्वों के आधार पर, एमएसटी ने भूमिहीन श्रमिकों से इन ज़मीनों पर कब्जा करने का आह्वान किया। भूमिहीन श्रमिकों ने यहाँ अपने घर, स्कूल और सामुदायिक रसोइयाँ बनाईं और जैविक खेती करते हैं।

एमएसटी की ये दो बस्तियाँ लोगों के लिए उम्मीद की किरणें हैं, जबकि समकालीन पूंजीवाद की नव–औपनिवेशिक संरचनाएँ लोगों को लगातार बेकार महसूस करवाती हैं। कृषि–व्यवसाय के अभिजात वर्ग के एजेंडे से प्रेरित ब्राज़ीलियाई विधान सभा का एमएसटी पर लगातार **हमला** जारी है। वे श्रमिकों और किसानों के लिए एक बेहतर कल बनाने की कोशिश में जुटे एमएसटी के 5,00,000 परिवारों को सफल नहीं होने देना चाहते। एमएसटी के

विल्सन लोपेस ने मैरिएल विवे कैम्प में मुझसे कहा कि, 'जब कुलीन वर्ग जमीन देखता है, तो उन्हें पैसा दिखता है, लेकिन जब हम ज़मीन देखते हैं, हो हमें लोगों का भविष्य दिखता है।'

दुनिया के ज्यादातर हिस्सों में लोगों के लिए बेहतर भविष्य की कल्पना करना मुश्किल हो गया है।भुखमरी बढ़ रही है। भोजन का प्रबंध कर पाने वाले लोग भी अस्वास्थ्यकर खाना खाने को मजबूर हैं। निर्वहन खेती करने वाले किसान, जैसे कि एमएसटी बस्तियों में रहने वाले किसान, दुनिया का एक तिहाई (और मूल्य के संदर्भ में **80%**) से अधिक भोजन **उत्पन्न** करते हैं लेकिन फिर भी, कृषि के लिए पानी व उचित क़र्ज़ जैसी बुनियादी ज़रूरतों तक उनकी पहुँच न के बराबर है। एमएसटी लैटिन अमेरिका में जैविक चावल का **सबसे बड़ा** उत्पादक है। लेकिन ब्रेटन वुड्स संस्थान (आईएमएफ और विश्व बैंक), वाणिज्यिक बैंक और विकास एजेंसियाँ, तथ्यों के विपरीत जाकर देशों पर 'आधुनिकीकरण की नीतियाँ' अपनाने का दबाव डालती हैं। ये 'आधुनिकीकरण की नीतियाँ', जैसा कि हमने **डोसियर न. 66** में दर्शाया था, 1950 के दशक में वैश्विक नव–औपनिवेशिक संरचनाओं के सटीक मूल्यांकन के बिना बनी थीं। इन नीतियों के अनुसार यदि देश उधार लेकर अपने निर्यात सेक्टर को मजबूत करते हैं, और पश्चिम से तैयार माल आयात करते हैं, तो वो 'आधुनिकीकरण' कर पाने में सक्षम होंगे।

एमएसटी की बस्तियों में घूमते हुए मेरी वहाँ के निवासियों से बात हुई। सिंटिया ज़ापरोली, डायनी सिल्वा और रायमुंडा दे जीसस सैंटोस ने बताया कि कैसे उनके समुदाय को बिजली और पानी के लिए संघर्ष करना पड़ा। ऐसी सामाजिक सुविधाएँ बड़े पैमाने पर हस्तक्षेप किए बिना आसानी से उत्पादित नहीं होतीं हैं। उदाहरण के लिए, सुरक्षित पेयजल दुनिया के लगभग दो अरब लोग सुरक्षित पेयजल की पहुँच से बाहर है। सामाजिक उपभोग की वस्तुएँ अपने आप प्रकट नहीं होतीं। उनको बनाने के लिए जटिल संस्थानों की जरूरत होती है। हमारी आज की दुनिया में इस तरह का सबसे महत्वपूर्ण संस्थान राज्य है। लेकिन अधिकांश देशों की सरकारें बाहरी दबावों के कारण

अपने नागरिकों के हित में काम करने की बजाय निजी पूंजी और **धनी बॉन्ड–धारकों** को फ़ायदा पहुँचाने वाली आर्थिक नीतियाँ अपनाने को मजबूर हैं। निजी पूंजी और धनी बॉन्ड–धारक गरीब देशों में उत्पादित विशाल सामाजिक संसाधनों को हड़पने के लिए अग्रिम पंक्ति में तैनात खड़े मिलते हैं।

ये समस्याएँ नई नहीं हैं। लैटिन अमेरिका में, जनता के जीवन स्तर को बेहतर बनाने की सरकारी परियोजनाओं को अवरुद्ध करने वाली मौजूदा रुकावटों की शुरुआत मैक्सिको में हुए 1945 के कापुल्टेपेक सम्मेलन, 1945 के बाद से ही हो गई थी। मेक्सिको के तात्कालीन विदेश मंत्री एज़ेकिएल पाडिला ने सम्मेलन में **कहा** था कि 'अमेरिकियों के लिए सिर्फ कच्चे माल का उत्पादन करने और अर्ध–उपनिवेशवाद की स्थिति से बाहर निकलना अत्यंत महत्वपूर्ण है।' उनका मत था कि [दक्षिणी] गोलार्ध में रहने वाले लोगों को [लैटिन अमेरिकी] क्षेत्र में उद्योग स्थापित करने के लिए टैरिफ और सब्सिडी जैसे सभी आवश्यक उपायों का उपयोग करने की अनुमति मिले। अमेरिकी विदेश मंत्री, डीन एचेसन ने इस रवैये से भयभीत होकर वेनेजुएला के प्रतिनिधिमंडल से कहा था कि 'प्रथम विश्व युद्ध के बाद और तीस के दशक की शुरुआत में टैरिफ बढ़ाना और आयात व अन्य नियंत्रणों द्वारा व्यापार को प्रतिबंधित करना... नासमझी है'। अमेरिका ने लैटिन अमेरिकी देशों में 'आर्थिक राष्ट्रवाद के सभी रूपों के उन्मूलन' पर एक प्रस्ताव पारित किया; जिसमें बहुराष्ट्रीय निगमों के मुनाफ़े के खिलाफ आर्थिक संप्रभुता का प्रयोग करने पर रोक लगाना भी शामिल था। उनका एजेंडा था कि प्रत्येक देश के संसाधनों से पहला लाभ अमेरिकी निवेशकों को मिले।

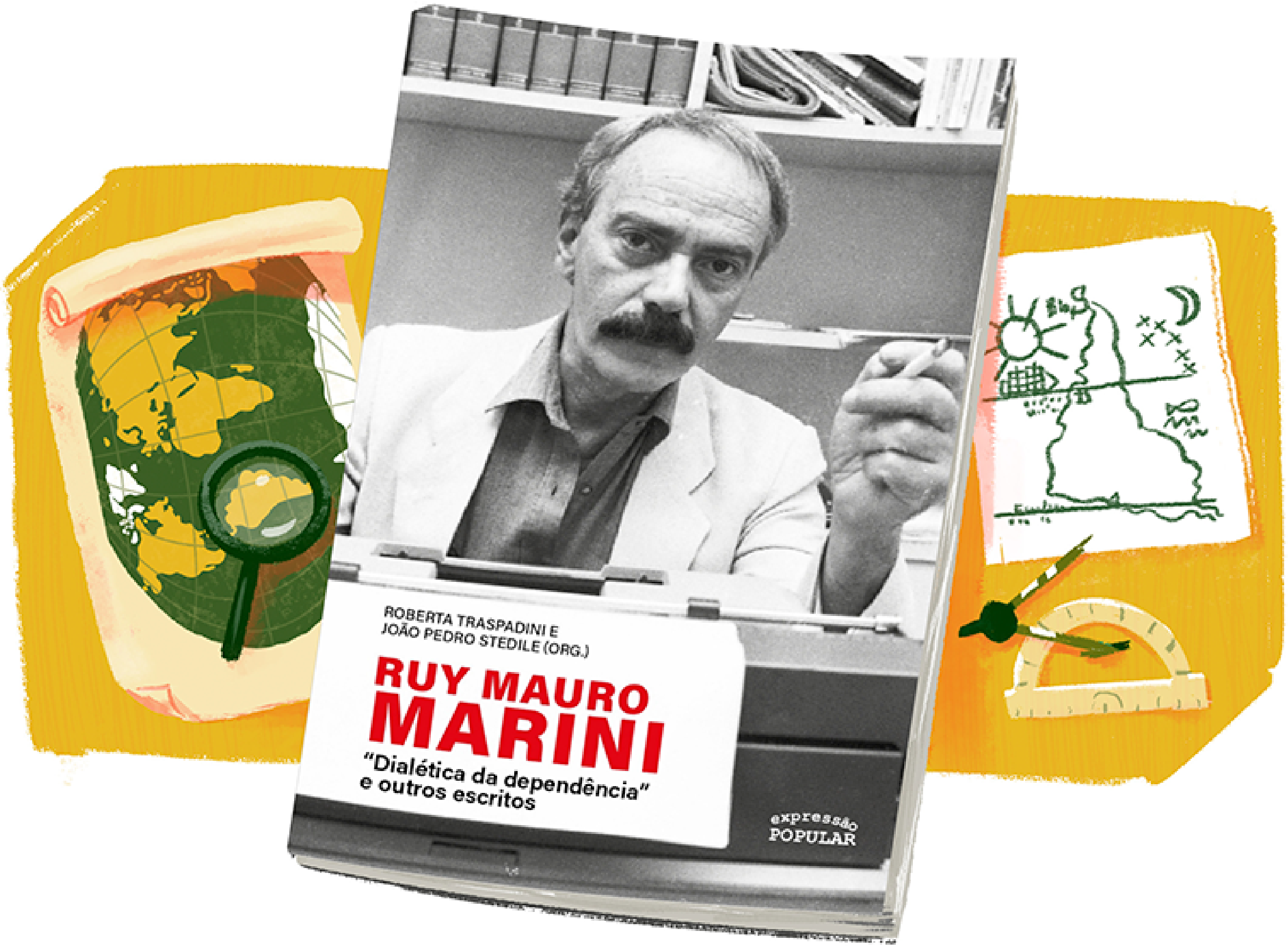

कापुल्टेपेक सम्मेलन के बाद 'निर्भरता सिद्धांत' की समझ विकसित हुई। यह सिद्धांत नव–औपनिवेशिक व्यवस्था का वर्णन करता है, जिसमें गरीब 'परिधि' देशों में पूंजीवादी विकास इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि उनकी आर्थिक उत्पादन संरचना अमीर 'केंद्रीय' देशों को लाभ पहुंचाती है। इससे गरीब देशों में, आंद्रे गुंडर फ्रैंक के **शब्दों में**, 'अल्प–विकास पैदा' होता है। हमारा अगस्त, 2023 का **डोजियर नं. 67** '[illegible]

[illegible]‘ ब्राज़ील के महत्वपूर्ण मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों में से एक, रे मौरो मारिनी (1932-1997) की शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित हुआ है और वर्तमान समय में तीसरी दुनिया के नज़रिये से ‘निर्भरता सिद्धांत‘ की एक मार्क्सवादी रूपरेखा प्रस्तुत करता है। डोसियर को ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान के ब्राज़ील ऑफ़िस ने लैटिन अमेरिका की एस्पिरिटो सैंटो फ़ेडरल यूनिवर्सिटी के शोध समूह, अनातालिया डी मेलो कलेक्टिव की प्रोफ़ेसर हेनाटा कूटो मोरेरा के सहयोग से तैयार किया है।

डोसियर का मुख्य तर्क है कि:

> अल्प–विकास का कारण किसी अर्थव्यवस्था के औद्योगिक पिछड़ेपन में निहित नहीं है। बल्कि, यह उस ऐतिहासिक प्रक्रिया में निहित है जिसके तहत पहले लैटिन अमेरिकी देशों को यूरोप ने उपनिवेशवाद के माध्यम से विश्व बाज़ार का हिस्सा बनाया था। लैटिन अमेरिकी देशों को राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल होने के पश्चात अंतरराष्ट्रीय संबंधों का प्रयोग करके उनको विश्व बाज़ार का हिस्सा बनाकर रखा गया। इस विश्व बाज़ार में वैश्विक पूंजीवादी श्रम विभाजन के हुक्मों की तामील करते हुए उनको आर्थिक निर्भरता के अधीन रखा गया।

लैटिन अमेरिका ही नहीं, बल्कि अफ़्रीका और एशिया के देश भी द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के युग में एक ऐसी विश्व व्यवस्था के अवांछित अंगों के रूप में उभरे थे, जिसे वे परिभाषित या नियंत्रित करने में सक्षम नहीं थे। चरम उपनिवेशवाद की ही तरह, मूल्यवान विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिए इन देशों से असंसाधित कच्चे माल का निर्यात किया जाता था, जिसका उपयोग महंगे तैयार उत्पाद और ऊर्जा खरीदने के लिए किया जाता था। इस असमान आदान–प्रदान में गरीब देश और गरीब होते गए और अमीर देश मालामाल होते गए। राउल प्रीबिश और हंस सिंगर ने 1940 के दशक में इसे साबित किया था और इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में इस बात की पुन:पुष्टि भी हो चुकी है। लेकिन असमानता की यह संरचना केवल व्यापार की [असमान] शर्तों पर आधारित नहीं थी, जैसा कि प्रीबिश या निर्भरता सिद्धांत के अन्य उदार विद्वानों ने समझा था। यह असमानता अहम रूप से उत्पादन के वैश्विक सामाजिक संबंधों पर आधारित है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की 2012 की एक रिपोर्ट के अनुसार दक्षिण के देशों में विभिन्न प्रकार के हथकंडों का प्रयोग करके मजदूरी को कम रखा जाता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मौजूद मज़दूरी में असमानता के पक्ष में दी जाने वाली दलीलें अक्सर नस्लवादी होती हैं। उदाहरण के लिए, यह तर्क दिया जाता है कि ज़र्मनी के किसी मज़दूर की तुलना में एक भारतीय मज़दूर की बुनियादी जरूरतें कम होती हैं। दक्षिण में मजदूरों को कम वेतन दिया जाता है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि वे मेहनत नहीं करते (हाँ, मशीनीकरण और कार्यस्थल के वैज्ञानिक प्रबंधन के अभाव के कारण उनकी उत्पादकता दर ज़रूर कम है)। निर्भरता का मार्क्सवादी सिद्धांत इस ‘अति–शोषण‘ पर केंद्रित है और इसको संभव बनाने के लिए आवश्यक श्रम अनुशासन का क्रियांवयन सुनिश्चित करने वाली उप–ठेकाकृत प्रणालियों की भूमिका पर प्रकाश डालता है। इस तंत्र के ज़रिए अमीर देश अपने यहाँ तो ऊँचे मानक स्थापित करते हैं, लेकिन दक्षिण के देशों में काम के अमानवीय हालातों को क़ायम रखते हैं। यही कारण है कि गरीब देशों में सामाजिक संबंध विषाक्त होते जाते हैं। हमारा मानना है कि:

> श्रम का अति–शोषण श्रमिकों के बढ़ते शोषण का द्योतक है। इसके परिणामस्वरूप ‘केंद्रीय‘ देशों में बेशी मूल्य का निष्कर्षण ऐतिहासिक रूप से स्थापित सीमा के पार चला जाता है। यह अविकसित अर्थव्यवस्थाओं में पूंजीवादी व्यवस्था की एक मूलभूत विशेषता बन जाती है, क्योंकि विदेशी पूंजी और स्थानीय शासक वर्ग नगण्य मजदूरी, अनिश्चित कामकाजी परिस्थितियों व श्रम अधिकारों की अनुपस्थिति से अपना मुनाफ़ा और पूंजी संचय बढ़ाकर लाभान्वित होते हैं। यही अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में इन देशों की निर्भरता और अधीनता के पुनरुत्पादन का कारण है।

हमारा तर्क है कि निर्भरता के चक्र को एक साथ निम्नलिखित दो आवश्यक कारवाइयों द्वारा तोड़ा जाना चाहिए: पहला, सक्रिय राजकीय हस्तक्षेप के माध्यम से एक औद्योगिक क्षेत्र का निर्माण करना और; दूसरा, गरीब क्षेत्रों में श्रम के अति–शोषण पर आधारित उत्पादन के सामाजिक संबंधों को चुनौती देने के लिए मजबूत श्रमिक वर्ग आंदोलनों का निर्माण करना।

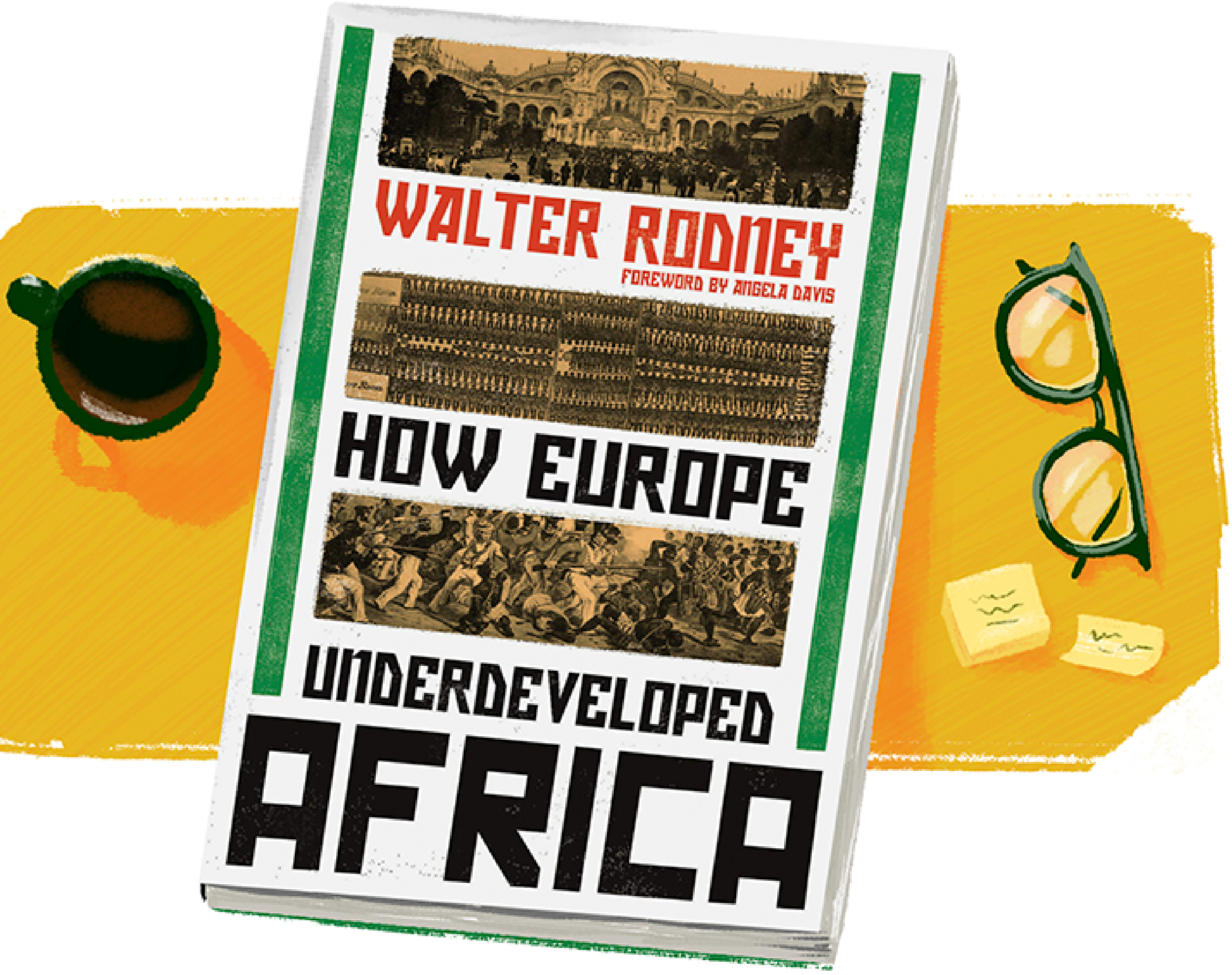

1965 में, ब्राज़ील में अमेरिका समर्थित तख्तापलट के एक साल बाद और इंडोनेशिया में अमेरिका द्वारा शुरू किए गए तख्तापलट के दौरान, घाना के राष्ट्रपति क्वामे नक्रूमा (1909-1972) ने एक महत्वपूर्ण पुस्तक, ‘*[illegible]*’ प्रकाशित की थी। इस पुस्तक में नक्रूमा ने तर्क दिया कि उपनिवेशवाद की बेड़ियाँ तोड़ कर आज़ाद हुए नए देश नव–औपनिवेशिक संरचना के जाल में फंस गए हैं। औपनिवेशिक लूट से गरीब हुए घाना जैसे देशों को बुनियादी सरकारी काम करने के लिए भी अपने पूर्व–उपनिवेशकों और ‘वित्तीय हितों के संघ‘ से कर्ज की भीख मांगनी पड़ी, जनता की सामाजिक जरूरतों को पूरा करना तो दूर की बात थी। उन्होंने तर्क दिया कि, ‘ऋण–दाताओं की आदत है कि वो भावी कर्जदारों को तरह–तरह की अपमानजनक शर्तें मानने के लिए मजबूर करते हैं, जैसे कि क़र्ज़दार देश अपनी अर्थव्यवस्थाओं के बारे में जानकारी प्रदान करें, अपनी नीतियों व योजनाओं की विश्व बैंक से समीक्षा करवाएँ, और अपने ऋण पर एजेंसी की निगरानी स्वीकार करें‘। आईएमएफ के संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम द्वारा बढ़े हस्तक्षेप ने उम्मीद की कोई जगह नहीं छोड़ी है।

नक्रूमा की पुस्तक की व्यापक रूप से समीक्षा हुई। अमेरिका की सेंट्रल इंटेलिजेंस एजेंसी (सीआईए) के उप निदेशक रिचर्ड हेल्म्स ने 8 नवंबर 1965 को पुस्तक पर एक गुप्त ज्ञापन लिखा और पुस्तक में साम्राज्यवाद पर सीधे हमले पर नाराज़गी जताई। फरवरी 1966 में, अमेरिका द्वारा प्रोत्साहित तख्तापलट द्वारा नक्रूमा को पद से हटा दिया गया।

दुनिया की नव–औपनिवेशिक संरचना को उजागर करने और संरचनात्मक परिवर्तन हेतु लड़ने की यह कीमत नक्रुमा को चुकानी पड़ी। यही कीमत अब पश्चिम नाइजर के लोगों पर थोपना चाहता है, जिन्होंने फैसला किया है कि वे अब अपनी संपत्ति फ्रांसीसियों को हड़पने नहीं देंगे और न ही अपने देश में अमेरिकी सेना का हस्तक्षेप बढ़ने देंगे। क्या नाइजर, या पूरे साहेल के लोग उन्हें सौ सालों से निराशा में रखने वाले निर्भरता के चक्र को तोड़ पाएंगे?

स्नेह–सहित,

विजय।